"ब्रिटिशकालीन टिहरी रियासत के लोकजीवन में प्रचलित विवाह परम्परा- एक ऐतिहासिक अध्ययन"

डॉ. सम्पत्ति*, डॉ. जितेश कुमार जोशी **

***Assistant Professor, Uttarakhand open university, Haldwani**

**** Assistant Professor, Uttarakhand open university, Haldwani**

शोध सार – भौगोलिक रूप से आधुनिक उत्तराखंड का हिमालयी भू-भाग टिहरी और उत्तरकाशी ब्रिटिश शासनकाल में टिहरी रियासत का भाग था | अतः हमारे अध्ययन का विषय इस क्षेत्र में उपस्थित विभिन्न वर्गों, जातियों व समुदायों द्वारा सम्पादित होने वाली विवाह की पद्धतियों एवं परम्पराओं का विश्लेषण करना है | ब्रिटिश हुकुमत से दूर टिहरी रियासत में ब्रिटिश सरकार की वैधानिक नीतियों के प्रभाव न पड़ने के कारण यह क्षेत्र अपनी सामाजिक परम्पराएँ निरंतर रूप से बनाए रहा। अतः टिहरी रियासत क्षेत्र के तत्कालीन लोकजीवन में प्रचलित विवाह पद्धतियों और विधि-विधानों में जाति, धर्म, क्षेत्र व आर्थिक स्तर के आधार पर भिन्नता दिखायी देती है। एक ओर उच्च स्तरीय सामाजिक-आर्थिक स्थिति प्राप्त द्विजातियों में विवाह को महत्वपूर्ण सामाजिक-धार्मिक संस्कार माना जाता था। वहीं दूसरी ओर अन्त्यज और अन्य निम्न सामाजिक स्थिति प्राप्त जातियों व उपजातियों में विवाह केवल एक सामाजिक समझौता मात्र था, जिसके अन्तर्गत इन लोगों के मध्य कन्यामूल्य की प्रथा सामान्य परम्परा के रूप में प्रचलित थी। अतः तत्कालीन लोकजीवन में कन्यादान, आंचल विवाह, टके का ब्याह, कुम्भ विवाह, प्रतिमा विवाह, नदी या पानीधारा विवाह, एकादशी विवाह, विनिमय विवाह, ढांटी विवाह एवं देवर-भावज इत्यादि अनेक विवाह पद्धतियां प्रचलित रहीं, जिनके द्वारा समाज में विवाह संस्कार सम्पन्न किए जाते थे। इस शोधपत्र के माध्यम से इन विवाह परम्परों की ऐतिहासिकता एवं लोकजीवन में इनके महत्त्व को उजागर करने का प्रयास किया जायेगा |

मुख्य शब्द- टेकवा प्रथा, टके का विवाह, ओडालसूत विवाह, वागदिया, मैतुल विवाह इत्यादि |

प्रस्तावना- गढ़वाल हिमालय के इतिहास में 19 वीं सदी एक नए युग के आरम्भ की शुरूआत थी, क्योंकि सन् 1815 ई0 में जब अंग्रेजों ने गोरखा शासन को हटाकर सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में अधिकार किया और गढ़वाल का राजा अब केवल टिहरी रियासत तक सिमट गया| यह महज राजनीतिक सत्ता का एक हाथ से दूसरे शासक के पास हस्तान्तरण मात्र नहीं था, वरन् नवीन राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था व नीतियों की स्थापना भी था। एक ओर ब्रिटिश गढवाल के लोकजीवन में ब्रिटिश कानूनों के अनुरूप महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए जा रहे थे, क्योंकि 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक गढवाल हिमालय में विवाह संबंधी न्याय संहिता न होने के कारण समाज में उपस्थित विभिन्नताओं वाली जातियों व जनजातियों के वैवाहिक सबंधों के निर्णयों में एकरूपता नहीं थीं। खश एवं अन्य प्राचीन काल से गढ़वाल में उपस्थित जातियों के खान-पान एवं विवाह संबंधों को मैदानी भाग से आए ब्राह्मणों तथा राजपूतों ने इन्हें अपने वर्ग व जाति से निम्न समझा। साथ ही अंग्रेजी प्रशासन में न्यायालयों में जजों को समझ नहीं आया कि इनसे संबंधित मुकदमों का फैसला किस आधार पर किया जाय| मिताक्षरा या खश रीति-रिवाज से। तब पन्नालाल द्वारा लिखित **"कुमाऊँ लोकल कस्टम" (1920)** नामक कानूनी ग्रन्थ के आधार पर कानून बने।

दूसरी ओर टिहरी रियासत के राजा द्वारा अपने प्रशासन को विधिवत संचालित करने के लिए टिहरी रियासत के दीवान **हरिकृष्ण रतूड़ी** द्वारा रचित ग्रन्थ **'नरेन्द्र हिन्दू लॉ' 1917** ई0 को राज्य के न्यायालयों में सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में प्रयोग करने का आदेश दिया गया। इस नवीन सामाजिक व्यवस्था एवं कानून ग्रन्थ द्वारा टिहरी रियासत की श्रेष्ठ द्विजातियों में विवाह का जो भी स्वरूप ग्राह्य किया गया अथवा विकसित हुआ उसमें दो विशिष्टताएं निहित थीं- विवाह का पवित्र एवं सांस्कारिक रूप तथा विवाह का अविच्छेद्ध होना।

गढ़वाल के राजवंशों से जुड़ी जातियों ने राजपंडितों, धर्माध्यक्षों तथा सनातन धर्म संस्थापक शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित सांस्कृतिक आदर्श-नियमों को विवाह संस्कार का आधार स्वीकार किया। टिहरी रियासत में इस समय गढ़वाल तथा कुमाऊ के राजवंशों तथा राजवंश से जुड़े श्रेष्ठ ब्राह्मणों और सेना में उच्च पदासीन राजपूतों में हिन्दू धर्मप्रणीत अविच्छेद और पवित्रतावादी मूल्यों पर आधारित विवाह पद्धति को मान्यता दी गई। इसके पश्चात् जिन व्यक्तियों ने भी विवाह के इस संस्कारित रूप अथवा स्थापित आदर्श नियमों की अवहेलना की, उन्हें जातीय संस्तरण की उच्च पक्ति से च्युत करते हुए कोई भी नवीन निम्न उपजाति प्रदान कर दी गयी। इसके विपरीत विवाह संस्कार की आदर्श रीति को अपनाते हुए श्रेष्ठ घरानो में कन्या देने पर कन्या के पिता के जातीय स्तर को विवाह संस्कार का आधार स्वीकार किया।

इस पृष्ठभूमि को आधार बनाते हुए टिहरी रियासत के लोकजीवन में आए हुए बदलाओं को समझा जा सकता है किन्तु साथ ही हमें यह भी समझने का प्रयास करना होगा कि इन महत्वपूर्ण कानूनी बदलाओं का असर लोकजीवन में किस गति से हो रहा था और जनसमुदाय अपनी परम्पराओं को किस तरह सम्पादित कर रहे थे | टिहरी रियासत में इस समय अलग-अलग जातीय और उपजातीय वर्ग और समुदाय के लोग निवास कर रहे थे, जिनके अपने रीति-रिवाज व परम्पराएँ थी| इसीलिए लोकजीवन में विवाह की परम्पराओं में भी भिन्नता दिखाई देती है | जिसे हम विभिन्न इतिहासकारों के मतों और दृष्टिकोणों से समझने का प्रयास करेंगें |

हरिकृष्ण रतूड़ी अपने ग्रन्थ **'नरेन्द्र हिन्दू लॉ'** में टिहरी रियासत के लोकजीवन में जाति एवं आर्थिक स्थिति के आधार पर अनेक विवाह पद्धतियों के प्रचलन की बात करते है | जैसे- ब्रह्म विवाह, टके का विवाह, विनिमय विवाह, ओडालसूत विवाह, टेकवा प्रथा एवं सरोला पद्धति इत्यादि ।[1] किन्तु साथ ही रतूड़ी का यह भी कहना हैं कि यहां के लोकजीवन में विवाह की मुख्यतः दो तरह की विवाह पद्धतियां ही शास्त्र संगत थी और जनसामान्य में प्रचलित थी- एक **ब्रह्म** और दूसरा **आसुरी**। और इन दोनों तरीकों में सगाई का तरीका भी अलग-अलग था। ब्रह्म विवाह के तरीके में सगाई की रस्म केवल जुबानी नहीं होती थी, अपितु उसमें शास्त्रोक रस्में वर और कन्या दोनों पक्ष द्वारा संपन्न होती थीं | लड़का (वर) बारात लेकर लड़की (वधू) के घर जाता था। वधू की छोटी बहन स्वागत द्वार पर पानी का भरा लौटा लिए खड़ी रहती थी। रवाई में इसे **'उषाधारी'** कहते थे, फिर गोत्रोच्चार, कन्यादान की रस्म और सात फेरों के बाद दूसरे दिन वर, वधू को लेकर अपने घर आता था। यह ब्राह्म विवाह का रूप कहलाता था। किन्तु आसुरी विवाह के तरीके पर मंगनी की रस्में ब्रह्म विवाह की तरह अदा नही होती थी, अपितु आसुरी ब्याह कन्या शुल्क देने से होता था और उसकी मंगनी की रस्में भी तभी अमल में आती थी, अत लड़की की कीमत जो बतायी जाती थी उसका कोई हिस्सा देने से और जुबानी इकरार देने के बाद ही सगाई की रस्म पूरी की जाती थी।[2] रतूड़ी इस प्रकार के विवाह के सम्बन्ध में यह भी लिखते है कि प्रायः ऐसे प्रमाण देखने को मिलते हैं कि लड़की का विवाह के बाद एक घर से छूट कराने के बाद दूसरे घर में विवाह कर दिया जाता था, जो कि खश जाति का प्रभाव था।[3] टका के ब्याह के लोकजीवन में प्रचलन को कमलेश कुंवर एवं आर०एस० पंवार उल्लिखित करते हुए लिखते है कि यमुना बेसिन क्षेत्र में विवाह तय करते समय लड़की के माता-पिता अपनी लड़की के विवाह हेतु वर पक्ष से वधूमूल्य के रूप में एक बहुत बड़ी धनराशि लेते थे। यह राशि 1000 रूपए से 2000 रूपए तक होती थी, जो स्वतन्त्रता पश्चात् पांच हजार रूपए से लेकर 25 हजार तक हो गयी। इसके साथ ही चांदी के रूपए भी लिए जाते थे। अत. लड़की के माता-पिता तभी अपनी लड़की के विवाह के लिए तैयार होते थे. जब उन्हें कोई भारी धनराशि चुकाने के लिए तैयार हो।[4]

हरिकृष्ण रतूड़ी इस सम्बन्ध में लिखते है कि ब्राह्मणों एवं उच्चजाति वर्ग के पढ़े-लिखे नौकरीपेशा क्षत्रिय वर्ग में कन्यामूल्य (टके के विवाह) और स्त्री के पुनर्विवाह की प्रथा नही थी और यदि कोई महिला पुनर्विवाह करती भी थी तो उसे जातिच्युत कर दिया जाता था। इनका मानना था कि कन्यामूल्य लेने से कन्या की हैसियत दासी की हो जाती है। इस प्रकार वैवाहिक सबंधों में पति-पत्नी की व्यक्तिगत विशिष्टताएं उदाहरणार्थ तुलनात्मक उम्र, शैक्षिणिक स्तर, आय स्तर, परिवार में वरिष्ठता स्त्री की निम्न स्थिति स्थापित करते थे जो ससुराल में स्त्री की हस्तक्षेप क्षमता अत्यन्त कम या नगण्य करते थे। टका के विवाह में वैदिक संस्कारों का दृढतापूर्वक पालन होता था साथ ही विधिवत शास्त्रसम्मत सप्तपदी होती थी। अन्तर केवल इतना था कि कन्यादान के विवाह में वधू के घर सप्तपदी सम्पन्न होती थी और जब तक यह संस्कार नहीं हो जाता था, तब तक उस जाति में उक्त वधू का आदरणीय स्थान नहीं हो पाता था। टका के इन विवाहों में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक जो धार्मिक कृत्य यहां अनिवार्य था उनकी सर्वथा उपेक्षा करके केवल वर और कन्या के

अविचारणीय आर्थिक आदान-प्रदान के कारण, उन्हें कन्या-विक्रय एवं आसुर विवाह कह देना अज्ञानता का परिचायक है। वर की ओर से कन्या के माता-पिता को जो धन दिया जाता था, उसका अधिकाशं विवाहोत्सव में एवं वस्त्राभूषणों के रूप में देर-सवेर कन्या के ही पास वापस चला जाता था। पति की सम्पत्ति पर पत्नी का जहाँ कोई अधिकार न हो तो वहां 'स्त्री-धन की पूर्ति के लिए भविष्य में कन्या के आर्थिक-सरक्षण को स्मरण रखते हुए, वर से आवश्यक आभूषणों के बहाने, यह धन प्राप्त करना आवश्यक ही नहीं, धर्मसगत भी था। कन्या के माता-पिता की निर्धनता के कारण वर से प्राप्त धन विवाहोत्सव एवं अतिथियों के सत्कार में भी व्यय होता था। इसके अतिरिक्त, आयुपर्यन्त कन्या और उसकी भावी सन्तति के पास, दहेज के रूप में, कई बार, वर के विवाह में दिए हुए धन से कई गुना अधिक कन्या के माता-पिता की निजी सम्पत्ति का चला जाता था।[5]

दूसरी ओर प्रयाग जोशी रंवाई-जौनसार में एक अन्य विवाह पद्धति **'वागदिया'** के प्रचलित होने की बात करते है। इस प्रकार के विवाह में लड़के के पक्ष से **मंगन्यारू** लड़की की ढूंढ में जाता था। लड़की पसंद आ गई तो यह टका (रूपया) लड़की की तरफ बढाता था। लड़की पैर छूकर अपनी स्वीकृति व्यक्त करती थी। इस ब्याह में लड़की को दहेज दिया जाता था। इस तरह के ब्याह का नाम **'वागदिया'** था। इस प्रकार के विवाह में मां के दूध का महत्व पिता के वंश से बढ़कर माना जाता था। लड़की का बारात लेकर जाना उसकी श्रेष्ठता का सूचक था, जिसकी अगवानी के लिए दूल्हा अपने घर में ब्राह्मण पुरोहित के साथ प्रतीक्षा में रहता था। बारात आती थी तो बाराती खारचों में बैठते थे और पुरोहित अग्नि के सामने बंधन निर्वाह करने का अनुबंध बोलकर फेरे लगवाता था. परन्तु शास्त्रीय 'सप्तपदी' की वचन बद्धताएं थोपी नहीं जाती थी। उसकी तुलना में लोक ही साक्षी होता था।[6] जौनसार में दूसरे किस्म के ब्याह में लेन-देन कुछ नहीं होता था। पसंद आने पर लड़की ब्याह दी जाती थी। तीसरा विवाह **मैतुल** कहलाता था, जिसमें लड़की के पैसे लिए जाते थे। खशों और अनुसूचित जातियों में इस विवाह का प्रचलन ज्यादा था।[7]

इतिहासकार शिवप्रसाद नैथानी लोकजीवन में **टेकवा विवाह** और **उडालसूत विवाह प्रथा** होने की भी बात करते हैं | उनका कहना है कि रंवाई में कई जगह, विशेषकर ठडियार क्षेत्र में प्रायः लोग गोरखा लड़के को टेकवा (घरजवाई) बनाकर निसंकोच रखते थे। उससे बरसों तक खेती बाडी व पशु चराई आदि का काम लेते थे। इस बीच उनकी बेटी से उसके बच्चे भी हो जाते थे पर जैसे ही वह असमर्थ या रोगी हुआ तो उसे घर से भगा देते थे। उस लड़की के लिए नया घर बसाना भी वहां सरलता से हो जाता था।[8] साथ ही जे०पी० बिजल्वाण का कहना है कि रंवाई-जौनपुर एवं टकनौर में एक अन्य प्रथा थी कि मेले उत्सव में यदि किसी पुरुष को कोई सुन्दर कन्या पसन्द आ गयी तो उसका जबरदस्ती अपहरण कर लिया जाता था। इस प्रथा के अनुसार नर-विजूला ने डख्याट गांव की लड़की का अपहरण किया था। इस विषय में लोकजीवन में यह लोकोक्ति भी प्रचलित थी कि "यदि गीतों की लय पर नाचती कन्या पसन्द आ जाए तो उसका अपहरण कर लेना चाहिए।"[9]

रंवाई- जौनसार क्षेत्र इस समयान्तराल में विश्व पटल पर सर्वाधिक रूप से अपनी **बहुपति विवाह प्रथा** के लिए प्रसिद्ध रहा। ब्रिटिश औपनिवेशिक इतिहासकार एटकिन्सन लिखते हैं कि बहुपति प्रथा कुमाऊं या ब्रिटिश गढ़वाल में नहीं है। यह प्रथा पश्चिमी टिहरी और जौनसार भाबर में है।[10] राहुल सांकृत्यायन एटकिन्सन की बात का समर्थन करते हुए इस परम्परा का जिक्र करते हुए लिखते है कि जौनपुर पट्टी के लोग वस्तुतः गढ़वाल की अन्य जातियों की अपेक्षा जौनसारियों से अधिक संबंध रखते है। बहुपति विवाह का यहाँ अब भी रिवाज है, जिसके अनुसार सभी भाईयों की एक साझा पत्नी होती है।[11] एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में भी इस परंपरा का विवरण देते हुए लिखा गया है कि गढ़वाल के रंवाई-जौनसार के एक अंचल में बहुपति प्रथा की विद्यमानता है। कई भाई एक या अधिक पत्नियों की हिस्सेदारी करते हैं, लेकिन अन्य व्यवस्थाएं निश्चित रूप से सामान्य है।[12]

मध्यकालीन लेखन अलबरूनी भी इस भू-भाग में बहुपति प्रथा होने का जिक्र अपने ग्रन्थ तहकीक-ए-हिन्द में करते हुए लिखता है कि जौनसार में खशों में सगे भ्राताओं की साझी पत्नियां होती हैं, लेकिन बाह्यागत सम्पर्क के कारण अब इस प्रथा का अन्त होता जा रहा है।[13] मध्यकालीन गढ़वाल के सन्दर्भ में ही लोकजीवन में प्रचलित एक कहावत **"सात भाइयों की एक जनानी मुण्ड नवाली"** एवं एक गढ़वाली पवाडे **"स्यूंदी-सुथा"** में उल्लेख है कि कर चुकाने में असमर्थ कई भ्राता एक ही पत्नी से निर्वाह करने को विवश हुए जो कि बहुपति प्रथा का प्रमाण ज्ञात होता है। रंवाई-जौनपुर एवं जौनसार में इन परम्पराओं से प्रभावित जन अपने को पांडवों की

सन्तान मानने के कारण सभी भाई साझी पत्नी रखते थे, अर्थात् द्रौपदी और पांच पांडव। सम्भवत परिवार को विखण्डित होने से बचाने के लिए भी इन्होंने इस प्रथा को अपनाया होगा।[14]

बहुपति प्रथा के सन्दर्भ में इस समय के लोकजीवन के अपने तर्क थे, जैसे- धन एवं पारिवारिक सम्पत्ति के बंटवारे से बचना। इनका मानना था कि इससे संयुक्त परिवारों में विघटन के विषाणु नही उगेंगे और परिवार की सम्पन्नता बनी रहेगी। अनेक परिवारों में तो आर्थिक विपन्नता भी इस बहुपति प्रथा का कारण था। ऐसे परिवारों में सम्पत्ति के बंटवारे के अवसर भी कम ही आया करते थे। किन्हीं परिवारों में तो चार-पांच तथा उससे भी अधिक पत्नियां हुआ करती थी, जो कि परिवार की सम्पन्नता की द्योतक मानी जाती थी। परिवार के सबसे बड़े बेटे के नाम पर चाहे उसकी आयु कुछ भी क्यों न रही हो परिवार में दुल्हन को लाया जाता था। उसमें वर-वधू का आयु विभेद भी आड़े नहीं आता था।[15]

यदि हम ऐतिहासिक संदर्भ में देखें तो बहुपति विवाह की परम्परा रंवाई-जौनसार क्षेत्र के अतिरिक्त भारत के अन्य क्षेत्रों व जनजातियों में भी प्रचलित थी। भारत के उत्तरवर्ती सीमा से लगे क्षेत्र की लेपचा जातियों में अनेक पतियों से विवाह की प्रथा सीमित रूप से प्रचलन में थी। इस सन्दर्भ में इन लोगों में एक विचित्र प्रथा थी। जब कोई व्यक्ति अकेला हो और वह कृषि कार्य अकेले न कर पाता हो या किसी अन्य कार्य में लगे रहना पड़ता हो तो वह पड़ोसियों में से किसी एक कुंवारे युवक को कृषि कार्य में मदद करने के लिए अपनी पत्नी के साथ रहने के लिए बुलाता था। इसके लिए कोई रस्म जरूरी नहीं थी। यह दूसरा पति कभी भी अलग से अपने लिए विवाह नहीं कर सकता। प्रचलित रीति के अनुसार पत्नी पति क्रम के अनुसार एक रात छोड़कर एक रात प्रत्येक पति के साथ बिताती थी।[16]

कश्मीर के पूर्वी क्षेत्र में स्थित लद्दाख के तराई क्षेत्र के निवासी लद्दाखियों की लड़कियां अनेक पतियों को वरण करती थीं। इन लोगों में प्रचलित रीति के अनुसार सबसे बड़ा भाई ही विवाह करता था। किन्तु कन्या को वर के छोटे भाइयों की पत्नी के रूप में भी माना जाता था। लेकिन जहां अनेक भाई होते थे. वहां यह संबंध तीन या चार भाइयों में ही सीमित रहता था। इस प्रकार की स्थिति में बदलते भाई किसी मठ में जाकर लामा का जीवन व्यतीत करते हैं। यदि छोटा भाई मठ में नहीं जाता था तो वह 'मागपा' पति बनकर किसी भी कन्या से विवाह कर सकता था। मागपा पति की हालत बहुत ही दुर्दशापूर्ण होती थी। उसे हमेशा ही पत्नी के वश में रहना पड़ता था और पत्नी जब भी मन हो पति को छोड़कर नया मागपा पति ग्रहण कर सकती है, दूसरे पति की हालत भी पहले के जैसी होती है। इसके साथ भी पत्नी वैसा ही व्यवहार करती है और चाहे तो उसके साथ भी संबंध तोड़ सकती है।[17]

टोडा जनजाति में भी ममेरी और फुफेरी बहन के साथ विवाह की रीति के साथ बहुपति प्रथा भी थी और यह सभी पति आपस में भाई होते थे अर्थात् कई भाई मिलकर एक ही स्त्री से विवाह करते थे। केरल में सुनारों का काम करने वाली आशरी जाति में अनेक भाइयों के साथ एक ही कन्या के विवाह की प्रथा थी। भारत के बाहर तिब्बत में भी एक से अधिक पति के साथ विवाह होता था। अतुल सूर इस बात की ओर भी इशारा करते हैं कि प्राचीन समय के आर्यों में भी एक स्त्री द्वारा अनेक पतियों के साथ विवाह की प्रथा थी और कभी ऐसी प्रथा यूरोप में भी थी।[18]

महिलावादी इतिहास लेखिका बोसरूप बहुपत्नी विवाह प्रथा के आर्थिक आधार को दर्शाते हुए लिखती हैं कि स्त्री-प्रधान कृषि व्यवस्था इसकी जनक थी| जितनी अधिक पत्नियां उतनी अधिक आर्थिक समृद्धि। छोटी पत्नी को पति तथा उसकी अन्य बड़ी पत्नियों की सेवा करनी पड़ती थी। पुरुष प्रधान कृषि व्यवस्था आते ही बहुपत्नी विवाह व्यवस्था आर्थिक रूप से लाभकारी नहीं रह गई, अतः एकपत्नी विवाह व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलने लगा। साथ ही विवाह के रीति-रिवाज भी बदलने लगे। मसलन स्त्री-प्रधान कृषि व्यवस्थाओं में विवाह के समय कन्या के पिता को दुल्हा या उसके परिवार के लोगों से कन्या मूल्य मिलने की प्रथा रही है, जबकि इसके उलट पुरूष प्रधान अर्थव्यवस्था में दहेज प्रथा आ गई। अब कन्या के पिता को दूल्हे के परिवार को धन देना पडता है। बोसरूप के अनुसार इस परिवर्तन में यह संकेत मिलता है कि समाज में बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप स्त्री के रिश्ते में किस प्रकार बदलाव आता है।[19]

इतिहासकारों ने रवांई-जौनसार क्षेत्र में बहुपति प्रथा के साथ ही ममेरी-फुफेरी बहन से विवाह संबंध स्थापित होने का भी उल्लेख किया है। ममेरी-फुफेरी बहिन से वैवाहिक संबंध की परम्परा जौनसार-बावर में प्राचीन समय से ही प्रचलन में रही थी। अतः मध्यहिमालय के खशों के मध्य-ममेरी फुफेरी बहिनों के साथ वैवाहिक संबंध हुआ करते थे। रंवाई तथा जौनसार बावर में भी प्राचीन खश रिवाज के अनुरूप मामा और बुआ की पुत्रियों से विवाह करने के प्रमाण इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए है।[20] रवांई-जौनपुर में बहुपति प्रथा, ममेरी फुफेरी बहन से विवाह जैसी प्रथाएं 19 वीं शताब्दी तक प्रचलन में थीं। धीरे-धीरे इन प्रथाओं का सामाजिक जागृति एवं शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण उन्मूलन होता गया| [21]

दक्षिण भारत में भी अनेक उपजातियां इस प्रकार की थी जिनमें मां के कुल में विवाह सबसे श्रेष्ठ माना जाता था। आन्ध्रप्रदेश के महबूबनगर के चेनचूओं में ममेरी बहन या फुफेरी बहन से विवाह करना ही वहां की रीति थी, परन्तु यह लोग कभी भी चचेरी बहन या ताऊ की बेटी से विवाह नहीं करते थे। माण्डला एवं बालाघाट क्षेत्र के बाइङ्गा दल व मुरिया समाज के लोग ममेरी और फुफेरी बहन से विवाह कर सकते थे। मदूरा के वालियानों में ममेरी बहन से विवाह होता था। वहीं कोचीन के कादारों में फुफेरी बहन के साथ भी विवाह का प्रचलन था। त्रावणकोर के उलूडन केवल फुफेरी बहन से विवाह करते थे पर मलकूरूवन फुफेरी बहन से विवाह नहीं करते अपितु ममेरी बहन से ही विवाह करते थे। [22]

ममेरी-फुफेरी बहन के साथ विवाह के प्रचलन के प्रारम्भ के पीछे आर्थिक कारणों का होना स्पष्ट होता है। इस प्रकार के विवाह में खर्च भी कम होता है और सम्पत्ति का विभाजन भी नही होता। इसी कारण से पिता की बहन की बेटी के साथ और माता के भाई की बेटी के साथ विवाह के लिए उत्साहित रहते थे। इसके अतिरिक्त अनेक इतिहासकारों का मत है कि कन्या विनिमय प्रथा से ही इस प्रकार के विवाह प्रारम्भ हुए क्योंकि इस प्रकार के विवाह अपनी ही जाति के दूसरे गोत्र में होने से ज्यादा कन्यामूल्य देना पड़ता था, जबकि अपनी ममेरी व फुफेरी बहन से विवाह का मूल्य कम या नही भी हो सकता था। [23]

इसके अतिरिक्त इतिहासकार जे०पी०बिजल्वाण का यह भी कहना है कि रवांई-जौनसार में निवासी स्वतन्त्र विचार रखने वाले और आनन्दप्रिय थे एवं इनमें कुमार-कुमारी गृह बनाने की प्रथा भी थी। युवक-युवतियों के प्रेम विवाह होते थे एवं इच्छानुसार विवाह विच्छेद भी होते थे। शेरिंग के अनुसार यह गृह, विवाह संबंध जोडने और गृहस्थ जीवन के प्रारम्भिक शिक्षालय होते थे। किन्तु इस तरह की परंपरा सभी समुदायों में उपस्थित नही थी | यहाँ मौजूद उच्च वर्गों या जातियों में विवाह छोटी अवस्था में ही हो जाता था।[24] बाल-विवाह के पीछे संयुक्त परिवार व्यवस्था जिसमें परिवार के कार्य का बोझ स्त्रियों व बच्चों पर पड़ता था, मुख्य कारण था। बोसरूप इंगित करती है कि अपनी जाति शुद्धता बनाए रखने के लिए ही ब्राह्मण जातियों की कन्याओं के लिए रजस्वला से पूर्व (नग्निका कन्या) ही विवाह का प्रावधान बनाया गया। ब्राह्मण जाति की महिलाओं के घूमने-फिरने में भी रोक रही क्योंकि इनके द्वारा अपने समुदाय की स्त्रियों को निम्न जाति के पुरुषों के सम्पर्क से बचाना और अपनी जाति शुद्धता बनाए रखना जरूरी माना गया। [25] भगवतगीता में बताया गया है कि जब विवाह का जातीय आधार लचर हो जाता है तो सामाजिक तथा नैतिक व्यवस्था का पतन होने लगता है। इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दू समाज के कर्णधारों में हमेशा यह भय बना रहता था कि नारी को स्व-विवेक के अनुसार आचरण करने की स्वतन्त्रता जाति व्यवस्था को संकट में डाल सकती थी। कठोर जाति व्यवस्था के विकृत होने की सम्भावना को समाप्त करने के लिए ही ब्राह्मण संहिताओं में नारी की यौनिकता के दोयम दर्जे को संस्थागत रूप दिया गया तथा राजसत्ता के माध्यम से लागू किया गया। [26]

टिहरी रियासत के उच्चवर्गीय लोगों में जाति-उपजाति, पिण्ड, प्रवर एवं गोत्रीय अनुबन्ध अनिवार्य रूप से मान्य थे। अन्य जातियों में अधिकतर वैवाहिक संबंधों की स्थापना वर्णों या गोत्रों के आधार पर न होकर उप जातियों के आधार पर होता था। एक ही जाति के अन्दर विवाह संबंध स्थापित नही किया जा सकता था। ऐसे ही सास और बहु एक जाति से नही हो सकती थी, किन्तु दादी और पोते की बहु कई जगह एक ही जाति से पाई जाती थी। मामा की कन्या और फूफी की कन्या और मौसी की कन्या से विवाह स्थापित नही किया जा सकता था।[27] राजपरिवार, जमींदार और उच्च स्थिति प्राप्त लोगों के मध्य अन्तर्जातीय और अन्तर्राज्यीय विवाह सम्पन्न हो जाते थे। सुदर्शनशाह की प्रिय रानी गुणदेवी कांगड़ा के राजा की बिरादरी से किसी अहलकार की पुत्री थी।[28] इसके अतिरिक्त यहां की प्रजा विवाह के शुभ अवसर पर सकलाना के मुआफीदारों द्वारा उनसे अधिक कर वसूलने से पीड़ित थी, जिसकी

शिकायत प्रजा ने राजा से की, लेकिन इस स्थिति में सुदर्शनशाह ने प्रजा को अवगत कराया कि मुआफीदार अपनी मुआफी के गांवों से, प्रत्येक गांव के निर्धारित राजस्व पर आधा आना प्रति रूपया विवाह का देय ले सकता है। लेकिन मैं इस संबंध में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।[29] राजाओं की तरह सकलाना के मुआफीदार अपनी पुत्री के विवाह के उपलक्ष्य में किए गए खर्चे को जनता द्वारा ही वसूल करते थे। गांव वालों को सयाणा की लड़की के विवाह अवसर पर बकरी की गर्दन व दो रान देने पड़ते थे।[30]

धार्मिक झगडे तथा दाय संबंधी झगड़े सदैव हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुकूल ब्रिटिश गढ़वाल में तथा टिहरी गढ़वाल में एक जैसे होते थे। स्मृति एवं धर्मशास्त्र ग्रन्थ जैसे- मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और मिताक्षरा ही गढ़वाल एवं टिहरी रियासत में विशेष मान्य समझे जाते थे।[31] कुछ जातियों विशेषकर उच्च वर्गीय जातियों की महिलाओं में पति की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह की प्रथा नहीं थी।[32] पंवार शासनकाल में यदि कोई व्यक्ति कम जाति की महिला से व्यभिचार करता था तो उसको साधारण दण्ड यथा जुर्माने का होता था। परन्तु उच्च जाति की स्त्री से व्यभिचार किया जाए तो स्त्री की नाक काटी जाती थी और पुरुष को मरवा दिया जाता था। यदि यह दण्ड सर्वसाधारण में प्रकट करने की इच्छा हो तो दण्ड पाने वाला स्त्री के पति की इच्छा पर छोड दिया जाता था।[33]

इतिहासकार शिवप्रसाद डबराल खश समाज में विवाह के नियमों को उदार और सरल बताते हुए केवल दो प्रतिबंध होने का उल्लेख करते हैं। प्रथम- विवाह केवल भीड़ लगदे या अपने वर्ण में हो सकता था। यदि कोई सवर्ण किसी हरिजन नारी को रख लेता था तो उसे विवाह नहीं कहा जा सकता था। गढ़वाल में नागपुर के तथा उससे लगे रवाई, टकनौर और जौनपुर के कुछ भागों में खस ब्राह्मण बारात लेकर ढोल बजाकर खस राजपूत लड़की से विवाह कर सकते थे, अन्यत्र ब्राहाण केवल ब्राह्मणों से और राजपूत केवल राजपूतनी से विवाह कर सकता था। अपने से निम्न वर्ण की कन्या से विवाह करने एव सबंध रखने पर खसताल' या 'डुमताल' लगने के कारण व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। दूसरा- अपनी उपजाति अपनी माता, दादी और नानी की उपजाति में विवाह नहीं हो सकता था। टिहरी राज्य के जिन भागों में सगे भ्राताओं की साझी पत्नियों को रखने की प्रथा प्रचलित थी, उनमें भी कोई व्यक्ति अपनी तथा अपनी माता की उपजाति में विवाह नहीं कर सकता था।[34] रवाई-जौनपुर में कुछ जगह और जौनसार तथा टोंस उपत्यका में खश ब्राह्मणों की अधिकता थी। यह ब्राह्मण क्षत्रियों से भी विवाह संबंध स्थापित करते थे। [35]

इतिहासकार एवं टिहरी राजा के वजीर रहे हरिकृष्ण रतूड़ी का कहना है कि ब्रिटिश गढ़वाल के लोकजीवन में आर्य और गैर आर्य जातियों में लड़का लड़की के नामकरण संस्कार के अवसर पर ही कुण्डली (जन्मपत्री) बनाए जाने की परम्परा रही थी व लड़का-लडकी के कुण्डली मिलान के पश्चात् ही सगाई पक्की की जाती थी। किन्तु रंवाई, टकनोर जैसे क्षेत्रों में लोगों को जन्मपत्री बनाने वाले पुरोहित नही मिल पाते थे अतः इनके द्वारा कुण्डली मिलान की परम्परा प्रचलित नही थी।[36]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि टिहरी रियासत के लोकजीवन में विवाह परम्पराओं में जो विभिन्नता हमें दिख रही है उसके पीछे मूलभूत कारण यहाँ विभिन्न समयकाल में भिन्न- भिन्न जाति समूहों का आगमन और इनके मध्य बने पारस्परिक सम्बन्ध रहें हैं | लोकजीवन में जहाँ कुछ जातीय परम्पराएँ दूसरे वर्ग के लिए शास्त्रसम्मत नहीं थीं वहीँ शास्त्रसम्मत विधि-विधानों से यहाँ के कुछ वर्ग अनभिज्ञ थे या फिर उन्हें इन विधि-विधानों को संपन्न करने की अनुमति नहीं थी | अंत में यह भी कहा जा सकता है कि ब्रिटिश शासनकाल में टिहरी रियासत में राजशाही शासन के कारणवश परम्परागत रूप से सामाजिक-धार्मिक विधि-विधान निरन्तर रूप से चलते रहे एवं इनमें कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं आए और ना ही ब्रिटिश कानूनों का इन पर कोई प्रभाव पडा।

सन्दर्भ

1. रतूड़ी, हरिकृष्ण, नरेन्द्र हिन्दू लॉ, एन.के. प्रेस, लखनऊ, 1918, 102.

2. रतूड़ी, हरिकृष्ण., वही, पृ०. 102.

3. रतूड़ी, हरिकृष्ण., वही, पृ०. 102.

4. कुंवर, कमलेश एवं पंवार, आर.एस., यमुना बेसिन का सांस्कृतिक भूगोल- क्षेत्र के मेले एवं त्यौहारों के विशेष सन्दर्भ में, रिसर्च इंडिया प्रेस, 2012, पृ० 105.

5. रतूड़ी, हरिकृष्ण, वही, पृ०. 102.

6. जोशी, प्रयाग, रवाई एवं जौनसार-बावर का लोकसाहित्य, पहाड़, नैनीताल, 2010, पृ० 2.

7. पूर्वोक्त, पृ० 2.

8. नैथानी, शिवप्रसाद, ब्रह्मपुर और सातवीं सदी का उत्तराखण्ड, पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर गढ़वाल, 2005, पृ० 16.

9. बिजल्वाण, जे०पी०., टिहरी एवं उत्तरकाशी का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, जनानन्द प्रकाशन, उत्तरकाशी, 2007, पृ० 412.

टिप्पणी- **"तान्दी तोड़ी ल्याणी बान्द"।**

10. एटकिसन, ई०टी०., हिमालयन गजेटियर, खण्ड-3, भाग-1, हिन्दी अनुवाद थपलियाल, प्रकाश., उत्तराखण्ड प्रकाशन, हिमालयन संचेतना संस्थान, पृ० I

11. सांस्कृत्यायन. राहुल., हिमालय परिचय-गढवाल, पृ० 287-288.

12. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (इण्डिया प्रा०लि०), नई दिल्ली, पापुलर प्रकाशन से साभार, खण्ड 3.

13. बिजल्वाण, जे०पी० द्वारा उद्धृत, वही, पृ० 217.

14. पूर्वोक्त, पृ० 216.

15. पूर्वोक्त, पृ० 217.

16. उनियाल, गुरु प्रसाद, अतीत से आधुनान्त टिहरी गढ़वाल, उत्तराचंल प्रिटिंग प्रेस, देहरादून, 2001, पृ० 143.

17. सूर, अतुल., भारत में विवाह का इतिहास, रेमाधव पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, गाजियाबाद, 2007, पृ० 80.

18. पूर्वोक्त, पृ० 83.

19. जोशी, गोपा द्वारा उद्धृत, भारत में स्त्री असमानता, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वी.वी., 2015, पृ० 19.

20. डबराल, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग 7. पृ० 123.

21. बिजल्वाण, जे०पी०, वही, पृ० 411-412

22. सूर, अतुल., वही, पृ० 81.

23. पूर्वोक्त, पृ० 80-81.

24. बिजल्वाण, जे०पी०, पूर्वोक्त, पृ० 202.

25. बोसरूप., जोशी, गोपा., वही, पृ० 340.

26. जोशी, गोपा., वही, पृ० 340.

27. रतूड़ी, हरिकृष्ण., वही, पृ० 125.

28. डबराल, शिवप्रसाद, टिहरी गढ़वाल राज्य का इतिहास, भाग-1, दोगड्डा, पृ० 147.

29. इंगलिश प्रिम्यूटिनी रिकार्डस् कुमाऊँ, सकलानी-अपील, शोधग्रन्थ टिहरी गढवाल रियासत कालीन गढवाल (1815-1949 ई० तक), श्रीवास्तव, नम्रता एवं प्रभा द्वारा उद्धृत, शशि, पृ० 70.

30. टिहरी गढ़वाल प्रेस्ट लिस्ट सीरिज 1, वाल्यूम-111, पृ. 11. राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ, वही, पृ० 77.

31. रतूडी, हरिकृष्ण, वहीं, पृ० 113.

32. पूर्वोक्त, पृ० 114.

33. पूर्वोक्त, पृ० 115.

34. डबराल, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग-7, वही, पृ० 370.

35. बिजल्वाण, जे०पी०, वही, पृ० 413.

36. रतूड़ी, हरिकृष्ण, वही, पृ० 107-108.

Copyright & License:
© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.